**ओ३म्**

**‘ईश्वर व जीवात्मा के यथार्थ ज्ञान में आधुनिक विज्ञान भ्रमित है।’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान ने मनुष्य का जीवन जहां आसान व सुविधाओं से पूर्ण बनाया है वहां अनेक समस्यायें एवं सामाजिक विषमतायें आदि भी उत्पन्न हुई हैं। विज्ञान व ज्ञान से युक्त मनुष्यों से अपेक्षा की जाती है कि वह जिस बात को जितना जाने उतना कहें और जहां उनकी पहुंच न हो तो उस पर मौन रहें। परन्तु हम देखते हैं कि सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर और जीवात्मा के विषय में आधुनिक विज्ञान आज भी भ्रम की स्थिति में है। इन दोनों सत्ताओं ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व का सत्य ज्ञान व विज्ञान वैज्ञानिकों के पास नहीं है। बहुत से वैज्ञानिक ऐसे हैं जो ईश्वर व आत्मा की स्वतन्त्र, पृथक, अनादि व अमर सत्ता में विश्वास ही नहीं रखते। बहुत से वैज्ञानिक नहीं किन्तु कथाकथित बुद्धिजीवी ऐसे भी हैं जिनका अध्यात्म व विज्ञान से कोई वास्ता नहीं रहा है, वेद व वैदिक साहित्य उन्होंने देखा व पढ़ा ही नहीं, फिर भी वह अपने मिथ्याविश्वास, अविवेक व दम्भ के कारण ईश्वर व जीवात्मा को नहीं मानते। इसके विपरीत भारत और विश्व में भी बहुत से वैज्ञानिक ऐसे मिल जायेंगे जो अपने अपने मत-पन्थ-सम्प्रदाय के ईश्वर व जीवात्मा संबंधी विश्वासों, जो अधिकांशतः अन्धविश्वास की श्रेणी में हो सकते हैं, को मानते हैं और विज्ञान को भी। हम समझते हैं कि वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी में विज्ञान व वैज्ञानिकों को एक बार पुनः ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व के बारे में व्यापक रूप से पुनर्विचार कर निश्चित करना चाहिये कि क्या यह दोनों पदार्थ व सत्तायें वस्तुतः हैं भी या नहीं और क्या यह दोनों सत्तायें विज्ञान की सीमा में आती भी हैं या नहीं। ऐसा करने से पूर्व उन्हें वैदिक विचारधारा का भी व्यापक अध्ययन कर लेना चाहिये जिससे ईश्वर व जीवात्मा के विषयक में नया यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाने में उन्हें सहायता मिलेगी।

आईये, मनुष्य जीवन की चर्चा करते हैं। मनुष्य जीवन में एक चेतन अविनाशी तत्व जीवात्मा होता है और दूसरा जीवात्मा का भौतिक शरीर होता है। भौतिक शरीर प्राकृतिक पदार्थों से बना वा अन्नमय होने के कारण आंखों से दिखाई देता है। अतः इसके अस्तित्व में किसी को किंचित भी शंका नहीं होती। व्यवहार में भी सभी कहते हैं कि यह मेरा सिर है, मेरे पैर, मेरी भुजा, मेरा शरीर है, आदि आदि। न केवल हिन्दी भाषा में ऐसा प्रयोग होता है अपितु अंग्रेजी में भी यही कहेंगे कि दीज आर माई आईज, दीज आर माई हैण्ड्स, इट्स माई नैक आदि। अन्य भाषाओं में भी ऐसा ही प्रयोग होना सम्भव है। यह कोई नहीं कहता कि यह हाथ मेरे शरीर के नहीं मेरी जीवात्मा के अंग हैं तथा इनके बिना मैं व मेरी आत्मा अधूरी व अपूर्ण है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि मैं, अर्थात् जीवात्मा, कुछ और है और यह जो **“मेरे”** नाम से सम्बोधित किये जाते हैं वह मुझसे भिन्न हैं परन्तु यह सभी मेरे अपने हैं जिस प्रकार से मेरी पुस्तक, मेरा घर, मेरे गुरूजी, माता व पिता आदि होते हैं। वैज्ञानिक भी बोल चाल व लेखन में इसी प्रकार का प्रयोग करते हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि शरीर व मैं अलग अलग हैं। जब कहीं किसी की मृत्यु होती है तो कहते हैं कि अमुक व्यक्ति नहीं रहा, मर गया, चल बसा। नहीं रहा का अर्थ है कुछ समय पूर्व तक शरीर में था परन्तु अब शरीर में नहीं रहा अथवा है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता की उस व्यक्ति का अस्तित्व भी पूरी तरह से समाप्त हो गया है अर्थात् उसका पूर्ण अभाव हो गया है। मर गया भी यह बताता है कि कोई व्यक्ति अब जीवित नहीं है, मर गया है, मरने से पहलेे वह जीवित था। मृत्यु होने से वह व्यक्ति शरीर में से कहीं चला गया है, इसलिए कहते हैं कि मर गया। यही स्थिति चल बसा शब्दों की भी है। चल गति को बता रहा है और बसा शरीर की क्रियाशून्यता को कि यह नहीं गया यह बसा अर्थात् यहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं जिससे शरीर में शरीर से पृथक एक चेतन तत्व के होने के संकेत मिलते है।

हम जिस सृष्टि या संसार में रहते हैं उसको बने व चलते हुए 1 अरब 96 करोड़ से अधिक वर्ष हो गये हैं। इस अवधि में मनुष्यों की लगभग 78 हजार पीढि़यां बीत गई हैं अर्थात् हमारे माता-पिता, उनके माता-पिता, फिर उनके और फिर उनके माता-पिता, इस प्रकार पीछे चलते जाये तो लगभग 78 हजार पूर्वज व उनके संबंधी बीत चुके हैं अर्थात् वह जन्में और मर गये। हमारे इन पूर्वजों ने अपनी बुद्धि, ज्ञान व अनुभव से अपने जीवन काल में आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अनुसंधान कार्य किये और वैज्ञानिकों की तरह से अनेक शास्त्रों व ग्रन्थों की रचना की। मध्यकाल व उसके बाद विधर्मियों ने नालन्दा व तक्षशिला सहित अन्य अनेक हमारे बड़े बड़े पुस्तकालयों को अग्नि को समर्पित कर ज्ञान व विज्ञान की भारी हानि की। इस दुर्भाग्य में भी कुछ सौभाग्य शेष रहा और वह है कि वेद, दर्शन, उपनिषदें, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद आदि अनेक ग्रन्थ जिनमें ईश्वर व जीवात्मा का हमारे पूर्वजों द्वारा अनुभूत ज्ञान भरा पड़ा है, सुरक्षित रहे। वह ज्ञान क्या कहता है, यह हमें देखना चाहिये। वस्तुतः महर्षि दयानन्द ने इन सभी ग्रन्थों को देखा, पढ़ा व समझा तथा इन ग्रन्थों की विज्ञान व ज्ञान तथा सांसारिक परिवेश एवं ऊहापोह कर इनकी परस्पर संगति लगाई और वेद, 6 दर्शन, 11 उपनिषद, प्रक्षेप रहित मनुस्मृति तथा अन्य अनेक ग्रन्थों की मान्यताओं को सत्य पाया। यह सभी ग्रन्थ एक स्वर से घोषणा करते हैं कि संसार में ईश्वर, जीव व प्रकृति अनादि, नित्य व अमर हैं।

इस संदर्भ में एक तथ्य यह भी है कि वैज्ञानिकों की दृष्टि में वेद वर्णित ईश्वर का वह स्वरूप स्पष्ट व सर्वांगपूर्ण रूप में सामने नहीं आया जिसका चित्रण दर्शनों, उपनिषदों व महर्षि दयानन्द के अनेक ग्रन्थों में हुआ है। इसके लिए वैज्ञानिकों ने न तो प्रयास किया और न इन मान्यताओं व विचारधारा के मानने वाले विद्वान उच्च व वरिष्ठ वैज्ञानिकों तक पहुंच सके। इस कारण ईश्वर का वेदवर्णित स्वरूप वैज्ञानिकों के सम्मुख नहीं आ सका। हमें लगता है कि संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों के सम्मुख ईश्वर का जो स्वरूप आया, वह पूर्ण व आंशिक रूप से ईसाई मत की पुस्तक बाइबिल व संसार में प्रचलित अन्य मत-मतान्तरों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप थे। यह स्वाभाविक है कि यदि कोई बाइबिल व अन्य मतों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप पर विचार करे तो वह एकदेशी, अल्प ज्ञान व शक्तिवाला, मनुष्य शरीर के कुछ कुछ समान आदि है एवं इन मतों में वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वान्तर्यामी नहीं है। अतः यदि वैज्ञानिकों ने इस स्वरूप के आधार पर कहा कि ईश्वर नाम की सत्ता नहीं है, तो इसमें हमें कोई आश्चर्य नहीं होता। वह एक प्रकार से ठीक ही है। दूसरा कारण यह भी है कि ईश्वर अतिसूक्ष्म होने के कारण आंखों से दृष्टिगोचर नहीं होता। वैज्ञानिक स्थूल प्रकृति व कार्यसृष्टि के पदार्थों का अध्ययन कर अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति संबंधी उनके निष्कर्ष प्रायः सत्य ही होते हैं व कुछ में समय के साथ साथ सुधार होता रहता है। वैज्ञानिकों के इन कार्यों से मानव जाति का अकथनीय उपकार भी हुआ है। परन्तु यथार्थ ईश्वर सृष्टि व पंचभूतों के समान कोई पदार्थ न होकर इनसे सर्वथा पृथक एक सर्वातिसूक्ष्म चेतन, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, ज्ञान व विज्ञान से पूर्ण एवं संसार को रचने, पालन करने वाली सर्वशक्तिमान सत्ता है। इस ईश्वर की सत्ता को अन्य प्राकृतिक वा भौतिक पदार्थों की तरह परीक्षण कर प्रयोगशाला में जाना व सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वर को भौतिक विज्ञान के तौर तरीकों से जाना व सिद्ध नहीं किया जा सकता अपितु यह पूरा का पूरा विषय योग विधि से शरीर में हृदय के भीतर स्थित जीवात्मा में ईश्वर के गुणों व उपकारों का वर्णन सहित ध्यान करने पर साक्षात व प्रत्यक्ष होता है। इसके लिए ध्यान करने वाले मनुष्य का भोजन व आचरण का शुद्ध व पवित्र होना भी आवश्यक है। वैज्ञानिकों को यदि ईश्वर को जानना है तो उन्हें इसी प्रक्रिया से गुजरना होगा अन्यथा उनके वा अन्य किसी के हाथ कुछ नहीं लगेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में जिस किसी को भी ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने की इच्छा हो उसको वेद और वैदिक साहित्य के साथ महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों की सहायता लेनी होगी। यदि वह ऐसा करेंगे तो उनका ईश्वर जानने व प्राप्ति का रास्ता सरल हो जायेगा।

अब वेदादि शास्त्र वर्णित ईश्वर के स्वरूप पर एक दृष्टि डालकर उसे जान लेते हैं। ईश्वर कैसा है, कहां है क्या करता, उसकी उत्पत्ति कब व कैसे हुई, उसने यह संसार क्यों बनाया आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। वैदिक साहित्य के अनुसार ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सब सत्य ही हैं। वह केवल चेतन मात्र वस्तु है। वह अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्य गुणों वाला है। उसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध न्यायकारी, दयालु और अजन्मा आदि है। उसका कर्म जगत् की उत्पत्ति और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्यों के फल ठीक ठीक पहुंचाना है। ऐसे गुण-कर्म-स्वभाव और स्वरूप वाला पदार्थ ही ईश्वर है। यह भौतिक पदार्थों की भांति विज्ञान की प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं किया जा सकता अपितु इसका अध्ययन, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, विचार, चिन्तन, ध्यान व उपासना आदि के करने से हृदय में इसका प्रत्यक्ष व साक्षात ज्ञान होता है। ईश्वर के बारे में कुछ और भी जान लेते हैं। ईश्वर के बिना न विद्या और न ही सुख की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर विद्वानों का संग, योगाभ्यास और धर्माचरण के द्वारा प्राप्त होता है। ऐसे ईश्वर की ही सब मनुष्यों को उपासना करनी चाहिये। यह उनका मुख्य कर्तव्य भी है कि वह सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, नित्य ज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमात्मा की ही सदा प्रातः व सायं उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देहरूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वदा सब मनुष्यों को प्राप्त हुआ करें। इस संसार को बनाने व संचालित करने वाला ईश्वर सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त स्वभाववाला, कृपा सागर, ठीक-ठीक वा सत्य न्याय का करनेवाला, जन्म-मरण आदि क्लेश रहित, निराकार, सबके घट-घट का जाननेहारा, सबका धत्र्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पालन-पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है। उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें अर्थात् ईश्वर के स्वरूप को अपने जीवन में समाविष्ट कर उसके अनुरूप ही आचरण व सम्पूर्ण व्यवहार करें। ऐसा करने से वह परमेश्वर हमारी आत्मा और बुद्धि का अपने अन्तर्यामी स्वरूप से हमको दुष्टाचार अधर्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार और सत्यमार्ग में चलाता है। उस प्रभु को छोड़़कर हम और किसी का ध्यान न करें, क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेवाला है। वह ईश्वर हम सबका उत्पन्न करनेवाला, पिता के तुल्य रक्षक, सूर्यादि प्रकाशों का भी प्रकाशक व सर्वत्र अभिव्याप्त है। हमारा ईश्वर सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्ययामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि का रचयिता व पालक है। ईश्वर को जानकर सभी मनुष्यों को उसका भजन करना चाहिये जिससे उसकी कृपा होकर हमें विज्ञान, दीर्घायु और जीवन के हर क्षेत्र में सफलता व विजय प्राप्त हो सके।

लेख को विराम देने से पूर्व हम संक्षेप में पुनः कहना चाहते हैं कि विज्ञान ने मानव जाति की उन्नति व सुविधा के लिए जो जो अनुसंधान आदि कार्य कर उनके अनुरूप पदार्थों का उत्पादन किया है, उसके लिए समूची मानव जाति उनकी ऋणी व कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि विज्ञान व वैज्ञानिकों का ईश्वर का न मानना उनका एक भ्रम है जिसका कारण ईश्वर का प्राकृतिक पदार्थों से सर्वथा भिन्न होना है जिसका प्रयोगशाला में अनुसंधान नहीं किया जा सकता। हम यह भी अनुभव करते हैं कि संसार के यदि सभी वैज्ञानिक वेद और वैदिक साहित्य का निष्ठापूर्वक स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, ऊहापोह, ईश्वर की गुण कीर्तन द्वारा उपासना आदि कार्य करें तो वह निश्चित ही ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानकर उसकी सत्ता को स्वीकार कर सकते हैं। इसमें समय लगेगा और भविष्य में कभी वह ईश्वर को अवश्य स्वीकार करेंगे क्योंकि महाभारत व उससे पूर्व के हमारे सभी ऋषि भी अधिकांशतः ईश्वर ज्ञानी, भक्त, उपासक, योगी व वैज्ञानिक थे। ईश्वर भक्त के साथ साथ वैज्ञानिक होना प्रशंसनीय एवं ज्ञान व विज्ञान के अनुकूल होता है। इसमें परस्पर कहीं कोई विरोधाभाष नहीं है। आशा करनी चाहिये कि वह दिन कुछ वर्षों व दशाब्दियों बाद अवश्य आयेगा जब सभी प्रमुख वैज्ञानिक भी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर वैदिक विधि से उपासक बनकर धर्म व विज्ञान की सेवा करेंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**